आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 4/अंक 2/जून 2024
Received:22/06/2024; Accepted:23/06/2024; Published:26/06/2024

हिंदी नवजागरण कालीन युग के निबन्धों में तत्कालीन समाज और राजनीतिक छवियाँ

- आँचल सिंह
पी.एच.डी. हिन्दी
संपर्क: 8506032849
इग्नू विश्वविद्यालय, दिल्ली

आँचल सिंह,**हिंदी नवजागरण कालीन युग के निबन्धों में तत्कालीन समाज और राजनीतिक छवियाँ** , आखर हिंदी पत्रिका, खंड 4/अंक 2/जून 2024, (149-156)

सारांश:

आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।"[1] यही निबन्ध केवल गद्य की ही नहीं बल्कि अपने समय के साहित्य की, लेखकों की लेखकीय सामर्थ्य और परिवेश की कसौटी है। हिंदी पट्टी में नवजागरण के अग्रदूत् भारतेन्दु हरिश्चंद्र तथा अन्य भारतेन्दु युगीन लेखकों पर यह आलोचनात्मक विवाद की स्थिति बनी रहती है कि क्या नवजागरण कालीन हिंदी लेखक राजभक्त अधिक थें या अपने देश के जन के प्रति अधिक समर्पित थें? भारतेन्दु युग में ही लेखकों ने निबन्ध के मानक स्तर को प्राप्त कर लिया था, मैं यह जानना चाहती हूँ कि क्या अपने निबन्धों के माध्यम से उन्होंने एक ज़िम्मेदार लेखक की भी भूमिका उतनी ही बखूबी निभाई थी, अपने परिवेश तथा समय के संघर्ष को वह कितनी सफलता पूर्वक अपने निबन्धों में स्थान दे पाए थे।

मूल आलेख:

नवजागरण कालीन सामाजिक व साहित्यिक परिवेश हेतु मैंने गद्य में निबन्ध विधा का चयन किया है, एक वैचारिकी की समझ पैदा करने के लिए निबंध से उत्तम विधा और क्या होगी। नामवर सिंह अपने लेख, 'हिंदी नवजागरण की समस्याएँ' में गद्य के इसी महत्व को रेखांकित करते हुए कहते हैं-

"भारतीय भाषाओं को नवजागरण की सबसे मूल्यवान देन गद्य है, और निराला के शब्दों में 'गद्य जीवन संग्राम की भाषा' है। विदेशी भाषा के विरुद्ध अपनी भाषा की रक्षा और विदेशी सत्ता के विरुद्ध स्वदेशी का जातीय अस्त्र है।"[2]

अतः मुझे यहाँ निबन्ध विधा के माध्यम से इस समस्या पर विचारना सर्वाधिक उचित अस्त्र जान पड़ता है। यहाँ नवजागरण काल को प्रथमतः समझ लेना उचित होगा। भारत में नवजागरण की धारण स्पष्ट करने वाले विद्वानों में रामविलास शर्मा का स्थान अतुलनीय है। अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में वे नवजागरण की अवधारणा स्पष्ट करते हुए इसके दो प्रतिक्रियात्मक आधार मानते हैं, पहला अंग्रेज़ो द्वारा पिछड़े कहलाये जाने के विरोध में उठी प्रतिक्रिया, जो भारत में आवश्यक परम्पराओं के परिवर्तन के हिमायती थे, दूसरे वे जो भारत के स्वर्णिम इतिहास व समृद्ध परंपरा को स्थापित करने में जुटे थे। उन्नीसवीं शती में हिन्दी भाषी प्रदेशों में जो समाज सुधार आंदोलन हुआ उसे डॉ. रामविलास शर्मा ने हिन्दी नवजागरण नाम दिया। नवजागरण यानि जन जागृति का आंदोलन, जहाँ औपनिवेशिक सत्ता के अत्याचार का ही बोध नहीं था बल्कि भारतीय अपनी अस्मिता को लेकर सजग हो रहे थे। नामवर सिंह, इसी नवजागरण की समस्या के केंद्र में भारतेन्दु द्वारा "स्वत्व निज भारत गहे" को मानते हैं,[3] इसी स्वत्व को वे 'अस्तित्व' की संज्ञा देते हैं। अस्तित्व का यह बोध भाषा तथा साहित्य के निर्माण से ही सम्पन्न होता है, जो पूरी एक 'जाति'[4] (रामविलास शर्मा द्वारा जाति से अभिप्राय उस सामाजिक इकाई से है जहाँ नवजागरण के कार्य सम्पन्न होते हों) द्वारा ही स्वीकार व अंगीकृत होती है, जाति का यह निर्माण रामविलास शर्मा औद्योगिक क्रांति से नहीं बल्कि कृषि व लघु उद्योगों से संपन्न मानते हैं-

"व्यापारिक पूँजीवाद का युग आधुनिक जातियों के निर्माण का युग है, इन जातियों के इतिहास की शुरुआत यही है। व्यापारिक पूँजीवाद के युग में जो भी साहित्य रचा जाता है वह आधुनिक काल में रचा गया साहित्य है...यदि औद्योगिक क्रांति से किसी जाति का निर्माण होता हो तो उन्नीसवीं सदी के भारत में कहीं किसी जाति का निर्माण हो ही ना सकता था।"[5]

रामविलास शर्मा भारतीय नवजागरण का प्रथम चरण सन् 1857 के स्वतन्त्रता संघर्ष को मानते हैं और द्वितीय व तृतीय चरण वे क्रमशः भारतेन्दु युग व द्विवेदी युग को मानते हैं। सन् सत्तावन का संघर्ष महत्वपूर्ण इसलिए भी है क्योंकि व अपने आप में असाम्प्रदायिक राष्ट्रीय स्वरूप का था, जो मुख्यतः हिन्दी भाषी प्रदेशों में चलाया गया था, रामविलास शर्मा के शब्दों में-

"सन् सत्तावन का संग्राम जातीय संग्राम था, यह भारत का राष्ट्रीय संग्राम भी है। उसका असर देश पर हुआ, हिंदी भाषी प्रदेश पर सबसे ज़्यादा।"[6]

प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट, जिन्हें आचार्य शुक्ल हिंदी गद्य साहित्य का 'एडिसन' व 'स्टील' की उपाधि देते हैं ,[7] वास्तव में वे हिंदी साहित्य में अपने निबन्धों के माध्यम से कुछ इतना ही सामर्थ्य रखते हुए नज़र आते हैं। साम्राज्यवादी काल में अंग्रज़ों द्वारा जबरन, अनुचित कर आरोपण, कच्चे माल के स्रोतों पर कब्ज़ा और लघु उद्यमों के ख़ात्मे के बाद क्या स्थिति होगी इसकी कल्पना की जा सकती है, निश्चित ही इन अनुचित नीतियों के फलस्वरूप भारतीय जनता में दुःख तथा रोष का भाव फैलना वाजिब था, हुआ भी यही, कईयों ने अपने आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाकर अंग्रेज़ो का साथ भी दिया, इसी समय बालकृष्ण भट्ट जैसे लेखक लिखते हैं-

"जिनको अपनी प्रतिष्ठा और गौरव का ख़्याल है वे ना केवल नीचा काम करने से अपने को अलग रखते हैं बल्कि आत्मोत्कर्ष विधान अपनी तरक्की अपने निज बाहुबल से क्यों कर हो सकती है इसे भी वे ही जानते हैं...गरीबी और निर्धनता में तो आत्मगौरव बड़ा भारी धन है जिसने अपना पत नहीं गवाया।"[8]

तत्कालीन क्रूर और साम्राज्यवादी सत्ता के बोझ से दबी जनता को किस प्रकार का मारक मरहम लगाना है, बालकृष्ण भट्ट यह भली भाँति जानते हुए दिखाई पड़ रहे हैं। अशिक्षा और दमन की नीतियों के बाद "इस अभागे आलसी देश में जो कुछ हो जाए वही बहुत है।"[9] जब यह वाक्य भारतेन्दु हरिश्चंद्र जैसे युगप्रवर्तक लेखक कहते हैं तो इसके पीछे देश की दुर्दशा का दुःख स्पष्टतः ही दिखाई देता है। जब पूरा विश्व अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध लोहा ले रहा था, उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में अमेरिका ने कितने पहले आज़ादी प्राप्त कर ली थी, फ्रांस व तुर्की देश यहाँ तक कि जापान जैसे छोटे देश ने भी इंग्लैंड के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था ऐसे में भारत जो कि कहीं ना कहीं अंग्रेज़ी नीतियों के कारण कुछ पीछे था, भारत में गाँधी जैसे नेताओं का आगमन नहीं हुआ था, तब अशिक्षा और नेतृत्व के भारी अभाव ने भारत को अंधेर में ला खड़ा कर दिया था, इस क्षोभ को भारतेन्दु कुछ यूँ प्रकट करते हैं-

"अमेरिकन, अंग्रेज़, फ्रांसीसी आदि तुरकी-ताजी सब सरपट दौड़े जाते हैं। सब के जी में यही है कि पाला हमीं पहले छू लें। उस समय हिन्दू का टियावड़ी खाली खड़े-खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं।"[10]

वे आगे लिखते हैं कि "इतने में जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देख भी लाज नहीं आती।"[11] मानो कोई माँ अपने शैतान बच्चे की शरारत से तंग आकर शिकायत कर रह हों। भारतेन्दु, 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' निबन्ध जब लिखते हैं, तब वे अपने विचार और भावनाओं का सामंजस्य जिस प्रकार कर के चल रहे हैं, ऐसे में आलोचकों का यह विवाद कि भारतेन्दु राजभक्त थें या देशभक्त, इन निबन्धों को पढ़ के, शून्य मालूम होता है। 'भारतेन्दु युग' पुस्तक में 'गुलाबराय' का मानना है कि "भारतेन्दु युग को प्रगतिशील सिद्ध करने का प्रयास वैसे ही है, जैसे लिप्टन की चाय को देशी सिद्ध करना।"[12] रामविलास शर्मा ने विस्तृत रूप में दिखाया है कि कहीं कहीं भारतेन्दु का अंग्रेज़ी सत्ता के समर्थन में लिखना उनकी सहित्यिकीय या मानसिक असंगति नहीं है बल्कि-

"भारतेन्दु की असंगतियां उनके युग की सीमाओं से पैदा नहीं हुई। वे उनके वर्ग की असंगतियां हैं, उस काजल की कोठरी की स्याही हैं जिसमें भारतेन्दु का जन्म हुआ था।"[13]
वे स्पष्ट लिखतें हैं कि-
"यह कहना अत्युक्ति ना होगी कि हिंदी प्रदेश में स्वदेशी आंदोलन के जन्मदाता और देश के लिए बलिदान का पाठ पढ़ाने वाले भारतेन्दु ही थे।"

भारतेन्दु जैसा साहित्यकार जब लिख रहा होता है तो वह प्रमाणों की असत्यता का कोई भय नहीं रह जाता, अपनी पत्रिका 'कविवचन सुधा' में भारतेंदु स्वदेशी माल के प्रति कभी लोगों को जागरूक कर रहे होते हैं[14] कभी अंग्रेज़ी राज्य में अशिक्षा, गरीबी और भुखमरी हेतु उत्तरदायी अंग्रेज़ो की तीखी आलोचना करते हैं।[15] 'हिंदुस्तान में दरिद्र होने के कारण' लेख में भारतेन्दु तत्कालीन समाजिक आर्थिक हालात का ख़ाका पेश करते हैं, जो तथ्यात्मक रूप से भी सही साबित होता है-

"हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी ना रहा। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है...कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।"[16]

भारत की दुर्दशा का एकमात्र कारण केवल अंग्रेज़ नहीं थे। नवजागरण के अग्रदूत राजा राम मोहन राय जिस समाज सुधार का आंदोलन भारत में चलाए थें, जिसके फलस्वरूप विधवा विवाह अधिनियम, बाल विवाह निषेध अधिनियम आदि कानून भारत में बनाये जा रहे थें। भारतीय समाज में रूढ़िगत समस्याएं थी, जिन्हें अनदेखा कर मात्र अंग्रेज़ी सत्ता का विरोध करना लाभदायक नहीं था। भारतेन्दु युगीन लेखक इस सामाजिक

समस्याओं से भली भाँति परिचित थे। कितने ही तीखे व्यंग्य के साथ बाबू राधाकृष्ण दास, अपने निबन्ध 'होली है' में लिखते हैं-

"आगे की यह चाल थी कि स्त्री विधवा हुई और उसका प्राण लिया गया, फिर सब सरकार से सती होने की मनाही हुई तब सोचा कि जीवदान तो अवश्य करना चाहिए, कैसे जीवदान हो? विधवा विवाह मत करो एक कि जगह दस जीवदान होंगे, भ्रूण हत्या ही सही!"[17]

यह निबन्ध लगभग अस्सी से नब्बे वर्ष पुराना है, पर क्या आज भी हममें इतना साहस है कि हम समाज की कुरीतियों पर इस प्रकार का व्यंग्य लिख सकें, बाबू राधाकृष्ण दास में यह साहस था, वह भी उस समय जब हम धर्म और परम्परा की बहस के बीच कहीं फंसे थे। 1899-1900 के दौरान भारत के मद्रास, बॉम्बे तथा दक्कनी क्षेत्रो में जब भीषण अकाल आया था, जब लगभग 5 पचास लाख लोगों की मृत्यु हो गयी थी, इस समय लार्ड कर्ज़न भारत का वायसराय था, इस समय भी अंग्रेज़ो की अनुचित नीतियों के कारण, निर्धन भारतीय जन को अकाल के मुँह में समा जाना पड़ा, जिसकी अनदेखी निश्चित ही साहित्यकार नहीं कर पाए। राधाकृष्ण दास उतनी ही साहसिकता से इस अकाल का जिम्मेदार वायसराय की नीतियों को ठहराते हैं, "हम लोगों के सौभाग्य से इस दुःसमय में हमें श्रीमान लार्ड कर्ज़न ऐसे प्रजावत्सल और विद्यारसिक शासक मिले हैं जिनके उत्तम प्रबन्ध से भारतवासी घोर अकाल और महामारी के कराल आक्रमण से रक्षा पाते हुए, उत्तम शिक्षा और उचित न्याय प्राप्त कर रहे हैं।"[19]

भारतेन्दु हरिश्चंद्र भारतीयों के बीच जिस आलस्य की बात कहते हैं, वह यूँ ही नहीं, इसी आलस्य की समस्या पर बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' पूरा एक निबन्ध लिखते हैं, 'समय'। तत्कालीन समय को संबोधित करते हुए कि भारतीय निर्धन जनता जिस औपनिवेशिकता के जिस अभिशाप को ढोये रही है, आलस्य उसका बड़ा कारण है। क्या हिंदी नवजागरण कालीन लेखकों की व्यापक दृष्टि का यह प्रमाण नहीं, कि वे एक समय पर कितनी ही समस्याओं के ओर हमारा ध्यान खींच रहे थें, एक निबन्धकार की यही विशेषता है, उसकी वैचारिकी के आयाम कितने व्यापक हैं, गूढ़ सी बात 'प्रेमघन' कितनी सरलता से कह जाते हैं, "आलस्य से भरे भद्दे स्वभाव में बेकार बैठे रहने की इच्छा प्रबल होती है और जो यही कहता है आज नहीं कल नहीं परसो यह करेंगे, जिसको तत्कालीन ही कर डालना उचित है, यह बात बुरी है...आलस्य लोहे की मुरचा सी लिपट जौहर खा जाएगी फिर किसी कार्य के करने का उत्साह जाता रहेगा।"[19]

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के लेखन की तुलना प्रतापनारायण मिश्र से की जाती थी, उन्हीं के जितना समान प्रतिभाशाली इन्हें भी माना जाता था। निर्मला जैन के अनुसार "उनका सर्वाधिक मुखर साहित्यिक रूप उनके निबन्धों में ही मिलता है।"[20]

प्रताप नारायण मिश्र जी के निबन्धों के शीर्षक अपने आप में अनूठे हैं, 'भौं', 'छै!छै!!छै!!!', 'मुच्छ', और 'हो ओ ओ ली है!' ऐसे कई- कई निबन्ध मिश्र जी ने लिखे हैं। मिश्र जी अपने निबन्ध 'बज्रमूर्ख' में तथाकथिक ब्राह्मणवाद पर कटाक्ष करते हैं, स्वयं ब्राह्मण होने के बाद भी वह पाखण्ड ब्राह्मण की पोल खोलने से संकुचाते नहीं- "ब्राह्मण का अर्थ है वेद और ईश्वर को जानने वाला, पर कहिए तो कै जने आपने देखे हैं जो त्रिवेदी कहा कि गायत्री अच्छी तरह जानते हैं, औ कै जने नौन तेल की चिंता का शतांश भी उस नित्य स्मरणीय की चिंता रखते हैं।"[21]

आज इक्कीसवीं शती में भी इतनी साम्प्रदायिक घटनाओं के बाद क्या हम ये चुनौतीपूर्ण कार्य कर सकते हैं, शायद कर भी सकें, परन्तु ये सोचते हुए एक पल का ख़याल जो हम करते हैं, कहीं भीतर डरते हैं, वह प्रतापनारायण मिश्र जैसे निबन्धकारों में नहीं। जो एक लेखक होने के नाते समाज के प्रति भी अपना उत्तरदायित्व निभाते हैं, क्या कलात्मक रूप से बखूबी निभाते हैं! इस नवजागरण कालीन निबन्धों में, आगे की पीढ़ी को विरासत में जिस श्रेष्ठ निबन्ध परम्परा की विरासत हमें मिली, 'शिवशम्भू के चिट्ठे' उसमें मील का पत्थर साबित हुई। यदि भारतीय साहित्यकारों की निर्भीकता और समाज के प्रति सच्चाई की प्रतिबद्धता का उदाहरण देखना है, तो बालमुकुंद गुप्त के 'शिवशम्भू के चिट्ठे' का पाठन करना चहिये, लॉर्ड कर्ज़न के नाम कितना निर्भीक और खुला पत्र उन्होंने लिखा है, शिकायतें रखी है मानों कोई अपना अधिकार किसी भूले को स्मरण करा रहा हो-

"अपने माई-लॉर्ड! जबसे भारत वर्ष में पधारे हैं बुलबुलों का स्वान ही देखा है या सचमुच कोई करने योग्य कार्य भी किया है? खाली अपना ख़्याल ही पूरा किया है या प्रजा के लिए भी कुछ कर्त्तव्य पालन किया है?"[22]

आगे पूरे भारत की तरफ़ से उनके प्रश्न पूछने की कला देखें- "विक्टोरिया मेमोरियल हॉल चंद पेट भरे उम्मीदों के एक दो बार देख आने की चीज़ होगी। उससे दरिद्रों का कुछ दुःख घट जाएगा...ऐसा तो आप भी ना समझते होंगे।"[23] ऐसा समय जब अंग्रेज़ एक के बाद एक व्यक्ति पर साहित्यकारों पर सीडीशन का आरोप लगा उन्हें कोठरियों में बंद कर रहे थें, ऐसे समय में 'गुप्त' जी अपने देश की साम्राज्यवादी सरकार से प्रश्न पूछते हैं, उनकी नीतियों का जवाब उन्हीं से माँगते हैं। उनके निबन्धों की इस हद तक वास्तविकता पर आलोचक 'कृष्णदत्त पालीवाल' को मानना पड़ता है, "गुप्त जी की सर्वाधिक प्रसिद्ध निबन्ध कृतियाँ हैं 'शिवशम्भू का चिठ्ठा' और

'शाहस्ता खां का ख़त'। यह व्यंग्य कला के साथ राजनीतिक निबंधों का प्रतिमान है। इतनी पैनी कलात्मक ढंग से अंग्रेज़ी साम्राजयवाद की बखिया उधेड़ने वाली दृष्टि बहुत कम रचनाकारों पत्रकारों में पाई जाती है।"[24]

निष्कर्षतः

उल्लेखित निबन्धों के अध्य्यन, महत्वपूर्ण विचारकों तथा तत्कालीन परिस्थितियों के अध्ययन के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि रामचन्द्र शुक्ल जिस साहित्य को जनता की सिंचित प्रतिबिम्ब का दर्पण मानते हैं, वह दर्पण नवजागरण कालीन इन्हीं निबन्धकारों ने रचा था, वह दर्पण इतनी कला कुशलता से रचा गया था जिसमें अंग्रेज़ो की अत्याचारी नीतियों तथा साहित्यकारों के विरोधों का चित्रण हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है, उन्होंने 'बाल विवाह', पर्दा प्रथा', 'धार्मिक पाखण्ड, मिथ्यावाद', स्त्रियों के अधिकार' तथा अंग्रेज़ो की दमनकारी नीतियों पर अपनी क़लम चलाते हैं, अपने युग के साथ उन्होंने पूर्णतः न्याय किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, 2019, पृ. सं. 248
2. नामवर सिंह,हिन्दी नवजागरण की समस्याएं, Hindi samay.com
3. वही
4. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ.सं. 21
5. वही, पृ.सं. 22-23
6. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी व हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, 2018, पृ.सं. 37
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, 2019, पृ. सं. 588
8. बालकृष्ण भट्ट, आत्मगौरव, hindisamay. com
9. भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है, स. कृष्णदत्त पालिवाल, भारतेन्दु हरिश्चंद्र के श्रेष्ठ निबन्ध, सचिन प्रकाशन, पृ. सं. 50
10. वही, पृ. सं. 51
11. वही, पृ. सं. 50
12. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ.सं. 33
13. वही, पृ. सं. 75

14. वही, पृ. सं. 74
15. वही, पृ. सं. 72
16. वही, पृ. सं. 76
17. श्यामसुंदर दास, राधाकृष्ण ग्रन्थावली खण्ड-1, इंडियन प्रेस लि., 1930, पृ. सं. 93
18. वही, पृ. सं. 125
19. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', समय, hindisamay.com
20. निर्मला जैन, निबन्धों की दुनिया; प्रतापनारायण मिश्र, वाणी प्रकाशन, 2012, पृ. सं. कवर पेज
21. प्रतापनारायण मिश्र, ब्रजमूर्ख, hindisamay. com
22. कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त:संकलित निबन्ध, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, 2014, पृ. सं.
23. वही, पृ. सं. 14
24. वही, पृ. सं. 13

****